Both Paper-VI

Calcolithic culture of India

भारत के ताम्रपाषाण संस्कृति

—0—

धातुकालीन सभ्यताओं में प्रथम चरण में मनुष्य सर्वप्रथम ताम्बे से परिचित हुआ। ताँबे का प्रयोग सर्वप्रथम प्रयोग कहाँ और किसने किया, यह अभी तक सुनिश्चित नहीं हो सका है। अनुमान लगाया जाता है कि सर्वप्रथम उसका प्रयोग पाँचवीं शताब्दी ई० पू० के आरम्भ में किसी समय हुआ था। उसका प्रयोग 45,000 ई०पू० के आस-पास सुमेर में प्रारम्भ हो गया था। पश्चिमी यूरोप तथा अफ्रिका के विभिन्न भागों में 3,000 ई०पू० तक ताम्बे का व्यापक प्रचलन हो गया था।

नवपाषाण युग का मानव क्रमशः घिसे और चिकने पत्थर के औजारों का प्रयोग छोड़कर उस अवस्था में आ गया जब वह खेती द्वारा अन्न उपजाने लगा। नर्मदा नदी से गोदावरी तक फैले हुए क्षेत्र में संस्कृति का यह पूर्वापर क्रम कितने ही स्थानों में पाया गया है जैसे- महेश्वर (प्राचीन माहिष्मती-नर्मदा के उत्तरी तटपर) नवदा टोली और जोर्वे (अहमदनगर जिला)। यहाँ पर- नवपाषाण युग के उत्तर काल की संस्कृति के चिह्न मिले हैं, जैसे - आकृतिविशिष्ट भाँडे नन्हें औजार, ताम्बे की वस्तुएँ। कहीं-कहीं उन्हीं के ~~पत्थर~~ साथ मिली घिसी-चिकनी अश्ममयी बाणियाँ, चमकी कतरने या मिली, काली रेखाओं से अलंकृत मृत्पात्र और ताम्बे के बर्तन या अन्य वस्तुएँ उस ताम्रप्रस्तरयुगीन संस्कृति की ओर प्रगति की सूचना देती हैं। जिसका विकसित रूप सिन्धु घाटी में पाया जाता है। अभी तक उसकी सामग्री पर्याप्त नहीं मिली क्योंकि भारत के पश्चिमी और मध्यभाग में ताम्बे की वस्तुएँ कम पायी गयी हैं। किन्तु उत्तरप्रदेश, बिहार और उड़ीसा में लगभग तीस स्थानों में ताम्बे के भूतल-निधान मिले हैं। उनमें 154 नमूने तो परशु और खनित्रों के हैं जिनमें बहुत तरह की बसूलियाँ और गड़ले शामिल हैं। इन वस्तुओं में तलवार, कटार, भाले और मछली मार बरछे भी हैं। इसके अतिरिक्त ताम्बे की कुछ आकृतियाँ हैं लुनुमा मानवों की हैं जो ~~मनुष्य~~ मनुष्य की दुलिनामा है। मध्यप्रदेश के

Scanned with CamScanner

गुंगेरिया नामक स्थान में प्राप्त ताँबे के 424 उपकरणों के बड़े भिभाग के रूप में मिली-जुली ताँबे की चाँदियाँ थीं। ताम्बे की वस्तुओं के दो केन्द्र थे, एक गंगा-यमुना का कांठा तथा दूसरा बिहार में राँची का पठार।

वसूलियों के नीचे का भाग किनारों की अपेक्षा लम्बाई में कुछ छोटा होता था। मछलीमार-बलाक्षधार बरछों में आगे की ओर धारदार नोक और दोनों किनारों पर दो या तीन मुड़े हुए आँकड़े बनाये जाते थे। कभी-कभी बीच की रीढ़ के उपर सिरे पर एक छिद्र या निकला हुआ कान भी मिलता है उनकी लम्बाई 12 इंच से 17 इंच तक है और वे सांचे में ढालकर बनाए गए हैं उनकी महत्वपूर्ण या मजबूत भारी-भरकम और मजबूत है। ताम्बे के धारदार और आँकुड़ेदार भाले, तलवार और छूरियाँ भी पायी गई हैं। ऋग्वेद में जुहिरनामक आयुध का उल्लेख है जिन्हें मरुद्गण कन्धे पर धारण करते थे। उनकी पहचान इन ताम्र भालों से की जा सकती है।

तिथिक्रम की दृष्टि से ज्ञात होता है कि पाषाणयुग की संस्कृति उस ऐतिहासिक युग की ओर-पैर बढ़ रही थी जिसकी एक छाप सिन्धुघाटी और दूसरी गंगाघाटी की आर्य-संस्कृति के रूप में प्राप्त होती है। सिन्धु घाटी की सभ्यता का देश और काल में अत्यधिक विस्तार था। उसमें ऊँचे ढंग के रहन-सहन का विकास हुआ था और प्रायः सभी प्रधान कलाओं और धन्धों का भी वहाँ अच्छा विकास किया गया। आर्य-संस्कृति के चिह्न अभी तक अनिश्चित हैं। पर कानपुर के पास बिठूर, शाहजहाँपुर के पास सरचौली, हस्तिनापुर के पास राजपुरपरसू से जो ताम्बे के ~~[illegible]~~ औजार और आकृतियाँ मिली हैं उनसे कुछ सांस्कृतिक संकेत प्राप्त होते हैं। एक नए प्रकार के भांड़े भी हमारे सामने आते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि उत्तरापथ के काले-चमकीले पात्र, जिन्हें N.B.P. पात्र कहा जाता है। अनेक स्थानों में मिले हैं जिनसे लगभग मौर्य-साम्राज्य की सीमाओं का दिक्-निर्देश सूचित होता है। इन पात्रों का समय 600 से 200 ई०पू० तक अनुमानित है। इनसे पहले दूसरे प्रकार के मृत्पात्र होते थे जिनके ऊपर था स्लेटी रंग पर काली—

रेखाओं से विभिन्न प्रकार की आकृतियाँ लिखी गई हैं एतएव इन्हें "रेखांकित धूसर पात्र कहना उपयुक्त है। जिनमें भी बहुत से बर्तनों पर काले धब्बों जैसी चमक मिलती है। इनके ठीक काल का अनिश्चय है, पर इतना अवश्य है कि वे काले चमकीले पात्रों से पूर्वयुग के हैं। यदि यह युग वैदिक एवं उत्तर वैदिक काल की संस्कृति के साथ कहीं जुड़ता है तो आश्चर्य नहीं।

उत्खनन में जोर्वे संस्कृति

दैमाबाद, इनामगांव, चंदोली, सोनगांव, प्रकाश एवं नावदा टोली आदि से मालवा की संस्कृति के अवशेष प्राप्त होती है। इसी प्रकार नासिक एवं नेवासा आदि संस्कृति के स्तर ऐतिहासिक काल के नीचे प्राप्त होते हैं। अतः यह संस्कृति मालवा एवं पूर्व ऐतिहासिक काल में महत्व रखी जा सकती है। इसके अतिरिक्त जोर्वे संस्कृति से सम्बन्धित स्थलों, जिनमें नेवासा, चंदोली, सोनगांव एवं इनामगांव मुख्य हैं। इसके कई रेडियो कार्बन तिथियाँ प्राप्त होती हैं। जिनके आधार पर ढकलीकर जोर्वे संस्कृति को 1700 ई०पू० में प्रारम्भ होकर 700 ई०पू० में समाप्तप्राय मानते हैं। ढवलीकर वर्षा में कमी के कारण सूखे जैसी स्थिति उत्पन्न होने से इस संस्कृति का अंत मानते हैं। लगभग 800 ई०पू० के आस-पास इनामगांव के निवासियों ने परिवर्तित परिस्थितियों में जीवन निर्वाह की कठिनता के कारण घुमक्कड़ जीवन प्रारम्भ किया।

सांकलिया ने कुछ समानताओं के आधार पर पश्चिमी ईरान व पश्चिमी एशिया से इस संस्कृति के सम्बन्ध जोड़ने का प्रयत्न किया है। कुछ विद्वान धूसर पात्रों एवं अन्त्येष्टि विधि में नये पात्रों व परम्पराओं के आधार पर दक्षिणी भारतीय नवपाषाण कालीन संस्कृति से अनुप्राणित माना है। विभिन्न स्थलों से ऐसे भी प्रमाण होते हैं जिनसे प्रतीत होता है कि यह संस्कृति शनैः शनैः मालवा संस्कृति से विकसित हुई एवं पश्चिमी महाराष्ट्र तथा उत्तरी कर्नाटक क्षेत्र में फैल गयी। अनुमानतः दक्षिणी भारत के निवासियों से इनके सम्बन्धों के परिणाम स्वरूप इनमें कुछ नवीनताएं समाहित हो गई।

Scanned with CamScanner